वीर संवत २४९२, फाल्गुन कृष्ण ७, रविवार
दि. १३-३-१९६६, ढाल-६, श्लोक-१३, १४. प्रवचन नं. ५४

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला'। अन्तिम गाथायें हैं। १३वीं का भावार्थ-'सिद्ध का स्वरूप'। सिद्ध परमात्मा-संसार का नाश करके सिद्ध हुए-उनका क्या स्वरूप है ? -(वह कहते हैं)। अन्तिम गाथायें है न ? दु:ख से शुरू किया था, पहली शुरूआत (वहाँ से की थी)। महा नरकादि के दु:ख अनन्तबार सहन किये, फिर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र दुर्लभ है, उनकी प्राप्ति बतलाई। उनके फलरूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पाये, उसे मोक्षरूपी दशा होती है, उस दशा का वर्णन है।

भावार्थ :- 'सिद्ध भगवान के आत्मा में केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोक (समस्त पदार्थ) अपने-अपने गुण और तीनों काल की पर्यायों सहित एक साथ, स्वच्छ दर्पण के दृष्टान्त...' इतना दृष्टान्त अधिक मिला, अधिक डाला। स्वच्छ दर्पण होता है, अरीसा-दर्पण का दृष्टान्त बहुत शास्त्रों में आया है। 'अमृतचन्द्राचार्य' ने 'पुरुषार्थसिद्ध उपाय' आदि में दर्पण का दृष्टान्त दिया है। जैसे दर्पण में पूरी चीज झलकती है, वैसे ही भगवान आत्मा (के) अपने ज्ञान की पूर्ण पर्याय में लोकालोक झलकता है अर्थात् ज्ञात होता है, ज्ञात हो जाए-ऐसी इसकी एकसमय की पर्याय है।

'स्वच्छ दर्पण के दृष्टान्तरूप से सर्व प्रकार से स्पष्ट ज्ञात होते हैं (किन्तु ज्ञान में दर्पण की भाँति छाया और आकृति नहीं पड़ती...)' दर्पण का दृष्टान्त आचार्यों ने बहुत जगह केवलज्ञान में उपमा (के लिये) दिया है। दर्पण.. ऐसा करके। **'वे पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षदशा को प्राप्त हुए हैं...'** (सिद्ध भगवान) **'तथा वह दशा वहाँ विद्यमान अन्य मुक्तजीवों की भाँति अनन्तानन्त काल तक रहेगी...'** परमात्मा अब वहाँ से फिरनेवाले नहीं है। दु:खी देखकर अवतार धारण करते हैं, भक्तों को... नहीं ? भक्तों की सहायता करने के लिये अवतार धारण करें-ऐसा है

नहीं। नीचे स्पष्टीकरण किया है, देखो !

'जिस प्रकार बीज को यदि जला दिया जाए तो वह उगता ही नहीं; उसी प्रकार जिन्होंने संसार के कारणों का नाश कर दिया, वे पुनः अवतार-जन्म धारण नहीं करते।' कह कहा था, श्रद्धा के गुण का इतना जोर है। परमात्मा पूर्णानन्द का जो पहला सम्यग्दर्शन प्रगट किया था, वह ऐसे का ऐसा सम्यग्दर्शन वहाँ रहता है, इसकारण वे संसार के रागादिरूप परिणमन नहीं करते और संसार को नहीं चाहते। तीन काल में सादि अनन्त दशा उनकी ऐसी रहेगी, पुनः अवतार-जनम धारण नहीं करेंगे।

'अथवा...' बहुत बार दृष्टान्त देते हैं.. ऐसे मक्खन। **'मक्खनमें से घी होने के बाद फिर से घी का मक्खन नहीं होता...'** मक्खन का घी होता है। संसार की अशुद्धदशा, वह मक्खन, उसका नाश होकर अन्तर स्वरूप की श्रद्धा पूर्ण आदि प्रगट होती है; परन्तु घी हुआ, (वह) वापस मक्खन हो-ऐसा नहीं होता। इसी तरह पूर्ण आनन्द का स्वभाव प्रगट हो, सम्यग्दर्शन प्रगट हो तो फिर गिरता नहीं तो वह तो पूर्ण दशा हुई... समझ में आया ? उस घी का मक्खन नहीं होता। **'उसी प्रकार आत्मा की सम्पूर्ण पवित्रतारूप अशरीरी मोक्षदशा (परमात्मपद) प्रगट करने के बाद उसमें कभी अशुद्धता नहीं आती; पुनः संसार में आना नहीं पड़ता।'**

पुनश्च यहाँ कहते हैं-**'अपरिमित काल व्यतीत हो जाने पर भी उनकी अखण्ड ज्ञायकता-शान्ति आदि में किंचित् बाधा नहीं आती।'** शान्ति जीर्ण नहीं होती-ऐसा कहते हैं। क्या (कहा) ? आत्मा में जो अनन्त शान्ति.. शान्ति.. .शान्ति.. शान्ति.. वीतरागता प्रगट हुई, उसे चाहे जितना काल लगने पर भी वह पुरानी होकर जीर्ण नहीं होती। वह तो ऐसी की ऐसी-ताजा की ताजा शान्ति रहती है। कहो, समझ में आया ? नयी-नयी प्रगट होती है न ? **'यह पुरुष पर्याय प्राप्त करके...'** नरभव (शब्द) लिया था न ? **'जिन जीवों ने इस शुद्ध चैतन्य की प्राप्तिरूप कार्य किया है, वे जीव अत्यन्त धन्यवाद के (प्रशंसा के) पात्र हैं...'** अपनी प्रशंसा-सिद्धपद की प्राप्ति के लिये अनुमोदन करते हैं। धन्य अवतार ! भाई ! जिसने संसार का अन्त किया और मोक्षदशा प्राप्त की। **'उन्होंने अनादि काल से चले आ रहे पंच परावर्तनरूप संसार के परिभ्रमण का त्याग करके उत्तम सुख-मोक्षसुख प्राप्त किया है।'** लो ! अब चौदहवीं।

रत्नत्रय का फल और आत्महित में प्रवृत्ति का उपदेश

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं;
अरु धरेंगे ते शिव लहैं; तिन सुयश-जल जग-मल हरैं।
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ;
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलौं झटिति निज हित करो ।।१४।।

अन्वयार्थ :- (बड़भागि) जो महा पुरुषार्थी जीव (यों) इसप्रकार (मुख्योपचार) निश्चय और व्यवहार (दुभेद) ऐसे दो प्रकार के (रत्नत्रय) रत्नत्रय को (धरैं अरु धरेंगे) धारण करते हैं और करेंगे (ते) वे (शिव) मोक्ष (लहैं) प्राप्त करते हैं और (तीन) उन जीवों का (सुयश-जल) सुकीर्तिरूपी जल (जग-मल) संसाररूपी मैल का (हरैं) नाश करता है । - (इमि) ऐसा (जानि) जानकर (आलस) प्रमाद (स्वरूप में असावधानी) (हानि) छोड़कर (साहस) पुरुषार्थ (ठानि) करने (यह) यह (सिख) शिक्षा-उपदेश (आदरों) ग्रहण करो कि (जबलौं) जबतक (रोग जरा) रोग या वृद्धावस्था (न गहै) न आये (तब लौं) तब तक (झटिति) शीघ्र (निज हित) आत्मा का हित (करौ) कर लेना चाहिए ।

भावार्थ :- जो सत्पुरुषार्थी जीव सर्वज्ञ-वीतराग कथित निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप जानकर, उपादेय तथा हेय तत्त्वों का स्वरूप समझकर अपने शुद्ध उपादान-आश्रित निश्चयरत्नत्रय को (-शुद्धात्माश्रित वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग को) धारण करते हैं तथा करेंगे वे जीव पूर्ण पवित्रतारूप मोक्षमार्ग को प्राप्त होते हैं और होंगे । (गुणस्थान के प्रमाण में शुभराग आता है, वह व्यवहार-रत्नत्रय का स्वरूप जानना तथा उसे निश्चय से उपादेय न मानना उसका नाम व्यवहाररत्नत्रय का धारण करना है)। जो जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और होंगे उनका सुकीर्तिरूपी जल कैसा है ?-कि जो सिद्ध परमात्मा का यथार्थ स्वरूप समझकर स्वोन्मुख होनेवाले भव्य जीव हैं, उनके संसार (-मलिनभाव) रूपी मल को हरने का निमित्त है । ऐसा जानकर प्रमाद को छोड़कर, साहस अर्थात् सच्चा पुरुषार्थ करके यह उपदेश अंगीकार करो । जबतक रोग या वृद्धावस्थाने शरीर को नहीं घेरा है, तबतक शीघ्र (वर्तमान में ही) आत्मा का हित कर लो ।।१४।।

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं;
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-जल हरैं।
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ;
जबलों न रोग जरा गहैं, तबलौ झटिति निज हित करो ॥१४॥

देखो ! अन्तिम उपदेश है। एक तो पहले (कहा कि) '**(बड़भागी) जो महापुरुषार्थी...**' मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ, वह महापुरुषार्थ है। संसार का पुरुषार्थ, वह उल्टा और विपरीत पुरुषार्थ है। भगवान आत्मा का स्वसन्मुख का पुरुषार्थ, महापुरुषार्थ है, अनन्तकाल में नहीं किया (-ऐसा अपूर्व पुरुषार्थ है)। क्योंकि अपने स्वरूप की रचना का जो वीर्य-अपने शुद्धस्वभाव को रचे-ऐसा उसका वीर्य महापुरुषार्थ है। विकार को अनादिकाल से रचता है, उसे तो शास्त्रकार नपुंसकता कहते हैं। विकार को रचे और विकार के दुःख को भोगे, वह कोई आत्मा का वास्तविक पुरुषार्थ नहीं है।

यह कहते हैं कि महापुरुषार्थ-चैतन्य के सन्मुख होना। अनादिकाल से परसन्मुख है, उससे विमुख होकर स्वसन्मुख होना, (वह) महान पुरुषार्थ है। समझ में आया ? भाई ! कौन करे यह महापुरुषार्थ ? आहा..! भगवान ! तुझमें पुरुषार्थ तो छलाछल भरा है। वीर्यगुण तो तुझ में ऐसा छलाछल भरा है-पूर्ण है, उस पर नजर डालने से महा सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र प्रगट होते हैं, वे महापुरुषार्थ से होते हैं। ऐसे जीव '**इस प्रकार निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकार के रत्नत्रय को (धरैं) धारण करते हैं और करेंगे...**' पुरुषार्थी जीव, देखो ! निश्चयरत्नत्रय भी पुरुषार्थी, व्यवहाररत्नत्रय भी, वही आत्मविकल्प व्यवहार पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ से आत्मा, निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय मोक्षमार्ग को धारण करता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- बड़भागी...

उत्तर :- वह पुरुषार्थ है। बड़भागी का अर्थ वह भाग्यवान अर्थात् पुरुषार्थवान ऐसा। भाग्य अर्थात् जड़ का यहाँ क्या काम है ? सिद्ध को महाभाग्यवान कहा है, भाग्यवान। सिद्ध को एक सौ आठ नाम में भाग्यवान कहा है। सिद्ध के १०८ नाम है न ? सुने हैं ? पढ़े हैं ? अभी

पहले-पहले आये हो न ? एक हजार आठ नाम।

मुमुक्षु :- बनारसीदास ने..

उत्तर :- हाँ, 'बनारसीदास' ने कहे हैं, दूसरे बहुतों ने कहे हैं। 'आदिपुराण' में कहे हैं। 'जिनसेनस्वामी' ने कहे हैं। बड़भागी-महाभाग्य.. महाभाग्य.. यही महाभाग्यवान सिद्धपरमात्मा। वह पुरुषार्थ तो मोक्षमार्ग का परुषार्थ है। समझ में आया ?

'**निश्चय और व्यवहार-ऐसे दो प्रकार के रत्नत्रय को धारण करते हैं...**' देखो ! पहला शब्द 'मुख्य' है, दूसरा शब्द 'उपचार' है । समझ में आया ? शुरूआत में भी निश्चय और व्यवहार-ऐसा लिया है। निश्चय और फिर व्यवहार। उसका हेतु और कारण लिया। यहाँ भी मुख्य और उपचार दो कहें। निश्चय स्वरूप आत्मा का अनुभव, आत्मा की दृष्टि, आत्मा का ज्ञान और आत्मा की रमणता-यह निश्चयरत्नत्रय है। इसे धरेंगे (अर्थात्) धारण करेंगे-ऐसा कहते हैं। धारण करेंगे, अपने आप नहीं; पुरुषार्थ से धारण करेंगे। समझ में आया ? व्यवहाररत्नत्रय भी उस जाति का शुभराग है न ? निमित्तरूप आता है, उसे व्यवहार से, धारण करते हैं-ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

'**वे मोक्ष प्राप्त करते हैं...**' मोक्ष के दो मार्ग हुए न ? एक उपचार और एक अन-उपचार, तो दोनों से मोक्ष प्राप्त करते हैं-ऐसा कहा जाता है। '**धारण करते हैं और करेंगे (भविष्य में), वे मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा प्राप्त करेंगे...**' प्राप्त करते हैं और भविष्य में प्राप्त करेंगे। भगवान आत्मा.. उसके स्वभाव का अन्तर में माहात्म्य करे, अन्तर में घोलन करके, दृष्टि, ज्ञान और रमणता में रमेंगे, वे अल्पकाल में मोक्ष को प्राप्त हुए और प्राप्त करेंगे। कहो, समझ में आया ? '**मोक्ष प्राप्त करते हैं तथा प्राप्त करेंगे; और उन जीवों का...**' उन सिद्ध हुए आत्माओं का... आहा... ! '**(सुयश-जल) सुकीर्तिरूपी जल (जग-मल) संसाररूपी मैल का नाश करता है और करेगा ।**' इस सिद्ध भगवान को लक्ष्य में लेकर जो परमात्मा ऐसे हुए, उनकी सुकीर्ति जग-जल-जगे जगत में, ऐसे परमात्मा सिद्ध ओ..हो... ! उन्हें जो लक्ष्य में लेगा, उसे वे सिद्ध भगवान उसके मल का नाश करने में निमित्त कहे जाते हैं। समझ में आया ?

'प्रसिद्धसिद्ध' आता है या नहीं ? 'प्रसिद्ध सुसिद्ध विशुद्ध...' वे तो प्रसिद्ध हैं-ऐसा कहते

हैं। सिद्ध भगवान तो जगत में प्रसिद्ध हैं, भाई ! आता है या नहीं ? भक्ति में आता है। प्रसिद्ध है न, कहते हैं। सिद्ध तो प्रसिद्ध है न ! इस पूर्णानन्द को प्राप्त वे तो सिद्ध अनादि से प्रसिद्ध है। वे प्रसिद्ध, उनकी सुकीर्तिरूपी जल से, उनकी प्रसिद्धि से... समझ में आया ? संसाररूपी मैल का नाश करते हैं। उनकी प्रसिद्धि संसाररूपी मैल का नाश करती है। वह संसार गया। ऐसे सिद्ध भगवान प्रसिद्ध सिद्ध सुसिद्ध, उनकी कीर्ति अर्थात् उनके गुणगान जो इस प्रकार है अथवा उनकी पवित्रता है, वह उनकी सुकीर्ति है। उसे जो अन्तर में समझेगा, उसे निमित्त करके उसके जगरूपी संसार के मैल को वे हरनेवाले हैं। सिद्ध भगवान मैल को हरनेवाले हैं। कहो, समझ में आया ? 'लोगस्स' में आता है या नहीं ? '**समाहिवरमुत्तमं आरोग्गबोहिलाभ**' सीखे थे तुम ? भाई ! 'लोगस्स' सीखे नहीं होते। कहो, समझ में आया ?

'**ऐसा जानकर प्रमाद (-स्वरूप में असावधानी) (हानि)...**' इस आलस्य की हानि करके, देखो ! आलस को छोड़कर, यहाँ पुरुषार्थ से बात है; कर्म को नहीं कहते कि भाई साहब ! कर्म छूट, इसे धर्म का लाभ करना है। आलस हानि, पाठ है न ?'-ऐसा जानकर आलस हानि, साहस ठानि, यह सिख आदरो।' अस्ति-नास्ति की है। ऐसा जानकर आलस (अर्थात्) इस संसार का जितना पुरुषार्थ, वह आलस है, प्रमाद है। जितना मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अज्ञान का पुरुषार्थ है, वह सब आलस है, उस आलस को छोड़कर-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- पड़ा रहे, वह आलसी नहीं ?

उत्तर :- पड़े रहे, वे सब आलसी ही हैं, आत्मा का पुरुषार्थ नहीं करते, वे सब आलसी के-प्रमाद के पण्डे हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो !

आलस छोड़कर, फिर हानि (इसलिए) छोड़कर कहा और '**साहस ठानि-हिम्मत-पुरुषार्थ करके...**' हिम्मत-पुरुषार्थ करके, ओ..हो.. ! मैं तो अल्पकाल में आत्मा की प्राप्ति करनेवाला, मुक्ति (प्राप्त) करनेवाला हूँ। मैं तो मोक्ष का ही पात्र हूँ। '**ऐसे साहस-पुरुषार्थ करके यह शिक्षा-उपदेश ग्रहण करो...**' आलस छोड़कर, पुरुषार्थ करके, जो यह शिक्षा कही है, उसे ग्रहण करो, समझो, कहते हैं। आहा..हा... ! देखो ! क्या कहते हैं ? '**जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करो।**' शास्त्र में भी ऐसे वाक्य आते हैं। जब तक रोग और

बूढापा नहीं आये... और वृद्धापन आयेगा तब शोर मचायेगा, कहते हैं, भाई !

'**जब तक रोग या वृद्धापन नहीं आये ...**' शरीर में रोग आवे, फिर ऐं... ऐं.. (करके) चिल्लाता है-ऐसा कहते हैं न ? और '**वृद्धावस्था नहीं आवे...**' वृद्धावस्था आये वहाँ ८५ और ९० और आहा..हा.. ! लार गिरे और यह हो.. बैठा नहीं जाए। सुनो ! भाई ! कहाँ हमें बैठने का ठिकाना नहीं। ऐसा जब तक जरा व रोग, जरा अर्थात् वृद्धावस्था न आवे '**तब तक में (झटिति) शिघ्र (निज हित करे) इस आत्मा का हित (करौं) कर लेना चाहिए ।**' विपरीतभाव तो अनन्तकाल से करता है-यह बाद में कहेंगे। 'झटिति' शास्त्र में आता है, हाँ ! 'कुन्दुकुन्दाचार्य' भी कहते हैं, भाई ! हीन पुरुषार्थवाले को... वरना तो वृद्धावस्था हो या नारकी का अवतार हो, वहाँ भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त कर सकता है, परन्तु यहाँ तो साधारण पुरुषार्थ-कमजोर (पुरुषार्थ) वाले को इस प्रकार कहते हैं, भाई ! वृद्धावस्था व जरा न आवे तब तक सावधान कर ले, फिर नहीं किया जा सकेगा, फिर चिल्लाहट मचायेगा। अरे... ! अवसर गया, अरे.. ! अवसर में (काम) नहीं किया और अब घिर गये। भाई ! ऐसी चिल्लाहट मचायेगा; इसलिए झट कर ले-ऐसा (कहते हैं)।

शीघ्र आत्मा का हित करो। भाई साहब ! शीघ्र हित करो, परन्तु कर्म रोकते हैं, उसमें हमारे क्या करना ? शीघ्र हित करो, किस प्रकार करना ? दर्शनमोह रोकता है, चारित्रमोह रोकता है... परन्तु वह रोकता नहीं, सुन न ! उल्टे पुरुषार्थ से तू दब गया है और सुल्टे पुरुषार्थ से आत्मा से स्वाधीनदशा प्रगट कर सकता है। तेरे हाथ की बात है-ऐसा कहते हैं। देखो न इसमें। ये 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं। कर्म का। (-ऐसा नहीं कहा कि) भाई ! तुझे कर्म हटेंगे, इसलिये अब पुरुषार्थ करना। समझ में आया ?

आत्मा का हित करना चाहिए। हित करना चाहिए.. भगवान आत्मा। ओ..हो.. ! उभार लेना चाहिए, चोरासी के अवतार में भटकने से उभार लेना चाहिए। समझ में आया ? इसमें तो ऐसा भी नहीं कहा कि यह संसार का पढ़ना चाहिए, यह नहीं कहा। यह करना, कहते हैं।

भावार्थ :- '**जो सत्पुरुषार्थी जीव...**' (सच्चा पुरुषार्थी) '**जीव, सर्वज्ञ-वीतराग कथित निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप जानकर, उपादेय और हेय तत्त्वों का स्वरूप**

समझकर...' यथार्थरूप से निश्चयरत्नत्रय, वह उपादेय है (और) व्यवहाररत्नत्रय-बीच में शुभभाव आता है, परन्तु वास्तव में तो वह हेय है। आता है, उसे व्यवहार से धारण करते हैं-ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? **'अपने शुद्ध उपादान-आश्रित...'** यह तो यहाँ अपन ने स्पष्टीकरण किया है। **'निश्चयरत्नत्रय (शुद्धात्म आश्रित वीतरागभावरूप मोक्षमार्ग) को धारण करता है...'** वास्तव में स्वरूप के आश्रय से निश्चयमोक्षमार्ग धारण करता है और जरा व्यवहारमार्ग रहे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि का राग (आता है), उसे व्यवहार से धारण करता है-ऐसा कहा जाता है। वह व्यवहाररत्नत्रय निमित्तरूप है न ? समझ में आया ?

'धारण करते हैं और करेंगे वे जीव पूर्ण पवित्रतारूप...' पूर्ण पवित्रतारूप **'मोक्षदशा को प्राप्त करते हैं तथा प्राप्त करेंगे। (गुणस्थान के प्रमाण में शुभराग आता है...)'** चौथे, पाँचवे, छठवें (में) शुभराग-देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, श्रद्धा का, पठन का-ऐसा भाव आता है। **'उसे व्यवहाररत्नत्रय का स्वरूप जानना और उसे उपादेय...'** वास्तव में उसे आदरणीय नहीं मानना... **'नहीं मानना, उसे व्यवहाररत्नत्रय का धारण करना कहा जाता है...'** आता है, उसे आदरणीय नहीं मानना, परन्तु उसे है-ऐसा जानना, उसका नाम धारण करना कहा जाता है। **'जो जीव, मोक्ष प्राप्त करते हैं और प्राप्त करेंगे, उनका सुकीर्तिरूपी जल कैसा है ?'** देखो ! उनकी कीर्ति। यह संसार की कीर्ति क्या धूलकहते हैं-ऐसा कहते हैं। इसने पाँच लाख कमाये और पच्चीस लाख कमाये और.. ओ..हो... ! नाम रखा बापू, इसके पिता का, अपना नाम रखा-बाप का नहीं। यहाँ तो कहते हैं-सिद्ध भगवान.. आहा..हा... ! जिनकी सुकीर्ति ऐसा जल-ऐसा प्रसिद्ध है कि-

'सिद्ध परमात्माओं का यथार्थ स्वरूप समझकर स्वसन्मुख होनेवाले जो भव्य जीव हैं, उनके संसार (मलिनभाव)रूपमल को हरने का...' परमात्मा की सुकीर्तिरूपी जल **'निमित्त है।'** इन भगवान सिद्ध की सुकीर्ति व्यापी है। सिद्ध प्रसिद्ध है न ! नहीं देखता ? आया था, यह 'धर्मदास क्षुल्लक' में आता है। 'धर्मदास क्षुल्लक' गये थे न ? भट्टारक के पास (इन्हें कहा कि) नहीं देखता ? सिद्ध है न ? सिद्ध प्रसिद्ध है न ? नहीं देखता ? कान में कीड़े पड़े थे (अर्थात्) धुन लग गयी थी कि वह क्या कहते हैं यह ? ऐसे करते सिद्धस्वरूप में... अपने सिद्धस्वरूप में दृष्टि लग गयी। समझ में आया ? आता है न ? भाई ! ऐसी कीर्ति सुप्रसिद्ध

भगवान की, कहते हैं कि जगत के प्राणी के अज्ञानरूपी मल को हरने का कारण है, निमित्त, हों !

'**ऐसा जानकर, प्रमाद छोड़कर, साहस अर्थात् सच्चा पुरुषार्थ करके अर्थात् वापस न गिरे साहस हानि...**' है न ? पुरुषार्थ प्रगट कर, पुरुषार्थ। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द स्वयं बिराजमान है, उसमें नजर डालकर ऐसा स्थिर हो कि फिर से वापस फिरना नहीं पड़े-ऐसा कहते हैं। '**(साहस हानि) अखण्डित पुरुषार्थ रखकर यह उपदेश अंगीकार करो।**' यह पुरुषार्थ रखकर यह उपदेश अंगीकार करो। '**जब तक रोग या वृद्धावस्था ने शरीर को नहीं घेरा है...**' हीन पुरुषार्थी को जरा (कहते हैं), वरना वृद्धावस्था और रोग में भी केवलज्ञान प्राप्त करता है। समझ में आया ? आहा..हा... ! सातवें नरक की पीड़ा... नरक हद भूल जाए रोग और सब, सोलह रोग जिसे समय में। उपयोग को अन्दर से एकदम.. खींचता है। खींचकर अन्दर में ले जाता है और (आत्मा का) अनुभव कर लेता है, आत्मा के आनन्द का स्वाद ले लेता है-वह सातवें नरक का नारकी। समझ में आया ? इसलिए रोग और वृद्धावस्था में आत्मा का कार्य न हो सके-ऐसा नहीं है।

यहाँ तो मात्र पहले झट पुरुषार्थ कर ले। वृद्धावस्था और रोग आने से पहले, इतनी आवश्यकता बताने के लिये बात करते हैं, भाई ! यहाँ की वृद्धावस्था और रोग से भी अनन्तगुना दु:ख नारकी में है। पहले (नरक से) अनन्तगुना सातवें में है। वहाँ भी एकदम अन्दर में (ढल जाता है)। अहो... ! अरे... ! यह तो आनन्दकन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु ही मैं हूँ। मैं ही परमात्मा हूँ-ऐसा भाव सातवें नरक के प्रतिकूल में भी करता है। '**रोग और वृद्धावस्था ने शरीर को नहीं घेरा है, तब तक शीघ्र (वर्तमान में ही) आत्मा का हित कर लो।**' भविष्य में करुँगा, (यह) छोड़ देना, वर्तमान में कर ले। समझ में आया ?

अन्तिम सीख

यह राग-आग दहे सदा, तातैं समामृत सेइये;
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ।
कहा रच्यो पर पदमें, न तेरो पद यहै, क्यों दु:ख सहै;
अब 'दौल'! छोड़ सुखी स्वपद-रचि, दाव मत चूकौ यहे ।।१५।।

अन्वयार्थ :- (यह) यह (राग-आग) रागरूपी अग्नि (सदा) अनादिकाल से निरन्तर जीवको (दहै) जला रही है, (तातैं) इसलिये (समामृत) समतारूप अमृत का (सेइये) सेवन करना चाहिए। (विषय कषाय) विषय-कषाय का (चिर भजे) अनादिकाल से सेवन किया है। (अब तो) अब तो (त्याग) उसका त्याग करके (निजपद) आत्मस्वरूप को (बेइये) जानना चाहिए-प्राप्त करना चाहिए। (पर पदमें) परपदार्थोंमें-परभावोंमें (कहा) क्यों (रच्यो) आसक्त-सन्तुष्ट हो रहा है ? (यहै) यह (पद) पद (तेरो) तेरा (न) नहीं है। तू (दुख) दु:ख (क्यों) किसलिये (सहैं) सहन करता है ? (दौल !) हे दौलतराम ! (अब) अब (स्वपद) अपने आत्मपद-सिद्धपद में (रचि) लगकर (सुखी) सुखी (होउ) होओ। (यह) यह (दाव) अवसर (मत चूकौ) न गँवाओ।

भावार्थ :- यह राग (मोह, अज्ञान) रूपी अग्नि अनादिकाल से निरन्तर संसारी जीवों को जला रही है-दु:खी कर रही है, इसलिये जीवों को निश्चयरत्नत्रयमय समतारूपी अमृत का पान करना चाहिए जिससे राग-द्वेष मोह (अज्ञान) का नाश हो। विषय-कषायों का सेवन, विपरीत पुरुषार्थ द्वारा अनादिकाल से कर रहा है; अब उसका त्याग करके आत्मपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिए। तू दु:ख किसलिये सहन करता है ? तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन-ज्ञान-सुख और अनन्तवीर्य है, उसमें लीन होना चाहिए। ऐसा करने से ही सच्चा-सुख मोक्ष-प्राप्त हो सकता है। इसलिये हे दौलतराम ! हे जीव ! अब आत्मस्वरूप को प्राप्त कर। आत्मस्वरूप को पहिचान ! यह उत्तम अवसर बारम्बार प्राप्त नहीं होता, इसलिये इसे न गँवा। सांसारिक मोह का त्याग करके मोक्षप्राप्ति का उपाय कर।

यहाँ विशेष यह समझना कि जीव अनादिकाल से मिथ्यात्वरूपी अग्नि तथा राग-द्वेषरूप अपने अपराध से ही दु:खी हो रहा है, इसलिये अपने यथार्थ पुरुषार्थ से ही सुखी हो सकता है। ऐसा नियम होने से जड़कर्म के उदय से या किसी पर के कारण दु:खी हो रहा है, अथवा पर के द्वारा जीव को लाभ-हानि होते हैं-ऐसा मानना उचित नहीं ।।१५।।

'अन्तिम सीख'

यह राग-आग दहे सदा, तातैं समामृत सेइये;
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये।
कहा रच्यो पर पदमें, न तेरो पद यहै, क्यों दु:ख सहै;
अब 'दौल' ! छोड़ सुखी स्वपद-रुचि, दाव मत चूकौ यहे ।।१५।।

अहा..!'**यह राग-आग दहै...**' राग शब्द से मोह। राग तो साधारण शब्द प्रयोग किया है। राग शब्द से मोह। पर में प्रीति और पर में अस्थिरता, वह राग है। हे आत्मा ! यह राग-आग, अग्नि है यह तो... आहा..हा...! भगवान आत्मा शीतलानन्द प्रभु ! शीतलनाथ ! उसे छोड़कर, यह मिथ्यामोह राग-अग्नि सुलगती है। सत्य होगा ? भाई ! यह कमाने में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में और सुनने में और.. आग सुलगती है, यहाँ तो कहते हैं। देखो न !

'**यह राग-आग दहै सदा...**' तुझे चौबीस घण्टे राग सुलगता है, बापा ! भाई ! भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु ! शीतलनाथ.. शीतल.. शीतल.. शीतल.. शीतल.. उपशमरस जिसके स्वभाव में बरसता है-ऐसे भगवान को छोड़कर कोई भी विकल्प उठाना-भ्रम का, अस्थिरता का, विषय का, इज्जत का, कीर्ति का, -आग सुलगती है, कहते हैं। सत्य होगा ? आहा..हा...! कैसे होगा ? भाई ! यह इसमें कोई मनुष्य दु:खी तो लगते नहीं। आत्मा की शीतल छाया, कल्पवृक्ष के समान शीतल प्रभु को छोड़कर जितने भ्रम के या राग-द्वेष के विकल्प करे, वह सब अग्नि सुलगती है, भाई ! भाई नहीं आये ? ठीक ! समझ में आया ?

यहाँ आग सुलगी है, (और) यहाँ (आत्मा में) शीतलता के ढेर पड़े हैं-ऐसा कहते हैं।

आहा..हा...! एकान्त.. नहीं आया था ? 'शीतल शिला एकान्त की, जहाँ इन्द्र विश्राम लहैं।' कल समवसरण स्तुति में आया था। शशीकान्त शीतल शशीकान्त शिला। इन्द्र आकर विश्राम लेते हैं। भगवान आत्मा के दर्शन करने, यहाँ विश्राम करेंगे। इसी तरह यह शशीकान्त शीतल आत्मा शान्त.. शान्त... शान्त एक विकल्प का तरंग उठे, वह सब दु:ख और आग-अग्नि है। समझ में आया ?

यहाँ तो क्या कहा ? अनादिकाल से शुभाशुभभाव, सब राग की दाह है-ऐसा कहते हैं। चौबीसों घण्टे। अनन्तबार दिगम्बर मुनि हुआ तो भी राग-दाह सुलगती है। ठीक है ? परन्तु यह क्या कहलाता है यह ? कि **'राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये...'** यह शुभ और अशुभराग, यह सब मिथ्याभ्रम, यह सब आग है। अनन्तकाल में अनन्तबार नौंवे ग्रैवेयक गया, वहाँ भी आग में सुलगता था-ऐसा कहते हैं। आहा..!

मुमुक्षु :- संसार अटके।

उत्तर :- संसार अटके तो क्या काम है इसे अब ? इसे होली बुझाना है या रखना है ? समझ में आया ? होली कहते हैं न ? होली-हुतासन।

यहाँ तो कहते हैं कि अहो ! भगवान आत्मा जितने प्रमाण में तूने 'पर में सुख है-ऐसी बुद्धि, पर के कारण दु:ख है-ऐसी बुद्धि, इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि'-यह सब राग अग्नि है, अग्नि। आत्मा की शान्ति को जलाती है। उसमें जल रहा हूँ, जल रहा हूँ, चौबीस घण्टे-ऐसा कहते हैं। ऐसा होगा ? भाई ! ये पैसेवाले ऐसे होंगे ? या गरीब ही होंगे ? चारों गति में गरीब और धनी; रंक और राजा; नारकी और देव-सब चौबीस घण्टे आत्मदृष्टि और आत्मा के ज्ञान बिना (राग) आग से जल रहे हैं। भाई ! चौबीसों घण्टे कहा न ? अशुभभाव से जल रहे हैं-ऐसा नहीं कहा। राग अर्थात् मोह; मोह के तो जो प्रकार मिथ्यात्व लो, शुभाशुभभाव लो; सब मोह (आ गया)।

'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेईये;' यह राग। **'जीव को जला रहा है राग; इसलिए समामृत (समतारूप) अमृत का सेवन करना चाहिए।'** समता शब्द से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। समझ में आया ? समता अर्थात् वीतरागता और वीतरागता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। समझ में आया ? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-राग-

द्वेष, वह अग्नि है, इसलिये उसे मिटाने को '**समामृत सेईये।**' सम प्रभु भगवान; समामृतस्वरूप अपना है, उसकी अन्तर पर्याय में भगवान का सेवन करना कि जिससे सम्यगदर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? समतारूपी अमृत का सेवन-सन्तोष (करना चाहिए)। सन्तोष की व्याख्या-पुण्य-पापभाव बन्ध का कारण है; शरीर आदि पर है; आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्व है-ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान करना, इसका नाम सन्तोष और समता कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें ? फिर समामृत कहा न, देखा ? समतारूपी अमृत। पहला (राग) आग, वह आग, तब यह अमृत।

'**सेवन करना चाहिए। विषय-कषाय का...**' अरे ! भाई ! कहते हैं, विषय-कषाय तो जो है, उनका अनादि काल से सेवन किया है। विषय-कषाय-उन पर सन्मुख के भावों को तो तूने अनादि से सेवन किये हैं। यह (स्व) विषय छोड़कर पर विषय की ओर के भाव अनादि से किये हैं। स्वर्ग में हो, नरक में हो, सब जगह तूने यह परभाव किये हैं। यह '**विषय-कषाय (चिर भजे) अनादिकाल से सेवन किया है।**' भजन करता है, भाई ! ठीक है ? अनादिकाल से विकार का सेवन करता है। आग को सुलगता है और सेवन करता है, कहते हैं।

मुमुक्षु :- प्रेम कैसे तोड़ना ?

उत्तर :- प्रेम तोड़ना अपने हाथमें-अधिकार में है। ऐसा प्रेम है और ऐसे प्रेम करना। क्या है इसमें ? फर्क कितना होगा ? अनादिकाल से तू विषय-कषाय को भज रहा है। एक ही विषय-कषाय अनादि से सेवन किये हैं-ऐसा कहते हैं।

'**अब तो उनका त्याग...**' कर। अब तो छोड़ ! अब तो छोड़ ! बहुत सेवन किये। आहा..हा...! निजपद है न ? '**अब तो त्याग और निजपद बेईये, निजपद बेईये..**' अनुभव करिये। भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुलस्वरूप, शीतल शान्त ज्ञानानन्द जल से भरा हुआ अमृतस्वरूप (है), उसका अनुभव कर न ! जिसमें शान्ति है, जिसमें सन्तोष है, जिसमें तृप्ति है, जिसमें कृतकृत्यपना है। कहो, समझ में आया ? यह उसका सेवन कर, कहते हैं। उल्टा सेवन करता है, सुल्टा कर। इसमें कुछ ऐसा नहीं कहा कि कर्म तुझे जलाते हैं। ऐसा कहीं कहा है इसमें ? देखो ! कहा है इसमें ?

मुमुक्षु :- दूसरे शास्त्र में कहा है।

उत्तर :- दूसरे शास्त्र में तो निमित्त से कथन होता है। यह '**राग-आग दहै सदा...**' ऐसा कहा है, भाई ! तेरा विकार तुझे जलाता है। कर्म तुझे जलाता है और दु:ख देता है-इसमें का एक शब्द भी है-पड़ा है इसमें ? यह 'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' है। प्रचलित (छह) ढाला। यह कितने ही-हजारों लोग को कंण्ठस्थ है। समझ में आया ?

एक ही बात-विकार का सेवन उल्टे पुरुषार्थ से करता है, सुल्टे पुरुषार्थ से अमृत का सेवन कर, बस ! एक ही बात की है, इसमें कहीं कर्म को याद नहीं किया है। तुझे कर्म ऐसे शिथिल पड़े और (ऐसा), हो, व ऐसा हो... भाई ! व्यर्थ के बहाने किये हैं... दोष (स्वयं) करता है और डालता है किसी (अन्य) के ऊपर... कर्म हमें ऐसे करता है, समझ में आया ? '**राग-आग दहैं सदा...**' कर्म तुझे जलाते हैं, कर्म तुजे सुलगाते हैं और दु:खी करते हैं-ऐसा इसमें नहीं कहा है।

निजपद को '**पहिचानना चाहिए-प्राप्त करना चाहिए...**' 'निजपद बेईये' इस निजपद को अन्दर झुका, अन्दर उगाड़, पहले विकार का उगाड़ अनादि से बहुत किया। भगवान आत्मा शान्त-अनन्त गुण की शान्ति, सन्तोष से भरा (है)। यह तृष्णा.. तृष्णा.. तृष्णा.. पैसे की तृष्णा, धूल की तृष्णा, इज्जत की तृष्णा, बड़प्पन की तृष्णा, (उसमें) सुलग रहा है। शान्त.. शान्त.. जल तेरा प्रभु ! निजपद में आजा और उसमें स्थिर हो, उसे प्राप्त करना चाहिए।

'**कहा रच्यो परपद में न तेरो...**' भाषा देखो ! '**कहा रच्यो परपद में, न तेरो पद यहैं; क्यों दु:ख सहे पद यहै, क्यों दु:ख सहै...** ' कहो, समझ में आता है या नहीं ? '**परपद... कहा रच्यो परपद में न तेरो..**' अरे.. ! भगवान ! '**परपदार्थों-परभावों में क्यों आसक्त सन्तुष्ट हो रहा है ?**' भाई ! पर-विकारी पद राग-द्वेष, अज्ञान, विषय-भोग-वासना, भ्रम-इन परपद में, भगवान ! क्यों सन्तुष्ट हो रहा है ? परपद '**कहा रच्यो परपद में, न तेरो पद यहै...**' यह वह पद तेरा है, उसमें आता है न ? भाई ! यह '**अपदं पदम**' ऐसी शैली इन्होंने यह सब शास्त्र की ही की है। 'समयसार' (कलश-१३८) अरे... ! यह अपद है, अपद है, हाँ ! आता है न ? भाई ! वह तेरा पद यहाँ है, यहां है। दो बार (लिया है) शैली सब (ऐसी ही ली है)। यह पूर्व के

पण्डित, घर का कुछ नहीं.. आचार्यों के शास्त्रों की भाषा भी.. यह रखकर बात करते हैं। आहा..हा...!

भाई ! यह विकारी पद तेरा नहीं, भाई ! अपद है न, प्रभु ! आहा..! यह विकारी पद, विकार-यह पर में सुखबुद्धि, पर में दुःखबुद्धि, पर में इष्ट-अनिष्टबुद्धि, राग-द्वेष, भाई ! परपद तो दुःख है न ! अपद है न ! यह निजपद तो यहाँ है न ! देखो ! ऐसा कहा न ? '**पद यहै...**' यहाँ है। वहाँ ऐसा कहा है न ? भाई ! यहाँ है, यहाँ है। निर्जरा अधिकार (कलश-१३८ में कहा है।) आहा...! भाई ! तू यहाँ है न अन्दर ! तेरा पद आनन्द और ज्ञान, अन्दर तू है न ! यह बाहर में कहाँ भटकता है ? आहा..हा...! समझ में आया ?

'**कहा रच्यो पर पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहे। पद यहै...**' यह पद पड़ा है न प्रभु ! आहा..हा...! अन्दर अनाकुल की शिला पड़ी है न ! यह आनन्द की-अतीन्द्रिय आनन्द की पाट अरूपी चैतन्य शिला है। यह पत रहा, भाई ! आहा...! '**क्यों दुःख सहै..**' यह पद पड़ा है न, दुःख क्यों सहन करता है ? -ऐसा कहते हैं। ऐसा पद है न शान्तरस का भगवान, उसे छ छोड़कर यह दुःख क्यों सहन करता है ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- वजन है। समझ में आया ? यह उसमें से लिया है, हाँ ! किसमें-निर्जरा में है न ? समझ में आया ? यह घर का नहीं है। देवानुप्रिया है न वहाँ ? अपद.. अपद.. है न ? यहे क ही पद आस्वादयोग्य है।

एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः॥१३९॥

'**वह एक ही पद आस्वादन योग्य है।**' भगवान आत्मा ! '**कि जो विपत्तियों का अपद है।**' जिसमें विपत्ति पद है नहीं। ऐसे आपदाओं का स्थान नहीं '**और जिसके आगे अन्य (सर्व) पद अपद ही भासित होते हैं।**' देखो ! यह आया, देखो ! १३८ '**आसंसारात्प्रतिपदममी रागिणो त्यिमत्ताः**' यहाँ भाई ! '**राग**' शब्द प्रयोग किया है, राग प्रयोग किया है। इन्होंने भी वहाँ राग प्रयोग किया है।

आसंसारारात्प्रदिपदममी रागिणो नित्यमत्ताः
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः

भाई ! ऐसी चैतन्य की-आनन्द की धातु-धारक भगवान है न, भाई ! वह यहाँ है न प्रभु ! तू यहाँ छोड़कर बाहर कहाँ जाता है ? भाई ! समझ में आता है ?

एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातुः
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति॥१३८॥

'हे अन्ध प्राणियों ! इस अनादि संसार से लेकर पर्याय-पर्याय में यह रागी जीव...' देखो ! यही भाषा है, हाँ ! रागी जीव। यह रागमत्त कहा था न यहाँ ?**'सदा मत्त वर्तते हुए जिस पद में सो रहे हैं, वह पद अर्थात् स्थान अपद है-अपद है।'** आहा..हा... !**'इस ओर आओ... इस ओर आओ, तुम्हारा पद यह है-यह है।'** देखो ! यह यहाँ आया ?

इस**'पद यहै-पद यहै..'** - इस शब्द पर जोर है। देखो !**'पद यह है...'** तेरा पद यहाँ है। अन्दर भगवान चिदानन्दस्वरूप है। पता नहीं पड़ता, घर में पूँजी खोने जाए बाहर।**'पद यहै क्यों दुःख सहै...'** यहाँ आनन्द पड़ा है न, दुःख क्यों सहन करता है ? -ऐसा कहते हैं।**'अब 'दौल' होऊ...'** समझे न ?**'होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चुकौ यहै।'** अरे... ! ऐसा तेरा पद ! अरे... ! घर में भरा भण्डार और यह झूठन बीनने जाता है, कहते हैं। लोक में नहीं कहते ? ए.. घर में ऐसी तेरी स्त्री और यह जहाँ-तहाँ गन्दी स्त्रियों में घूमता है। अरे.. ! समझ में आया ? इसीप्रकार यह तेरे घर में भगवान पड़ा है न, भाई ! उस भगवान को मिलने जाता नहीं और इस विकार को जहाँ-जहाँ मिलने चला जाता है। क्या है यह तुझे ? आहा..हा.. ! समझ में आया ?

'हे दौलतराम ! वह पद तेरा पद नहीं है। तू दुःख क्यों सहन करता है ? हे दौलतराम ! (अब) अब (स्वपद) तेरे आत्मपद-सिद्धपद में (रचि) लगकर सुखी (होऊ) होओ ! (यहे) यह (दाव) अवसर (मत चूकै) गँवाना नहीं।' अभी यह दाव-अवसर है, कहते हैं। समझ में आया ?'सब अवसर आ गया है'-यह तो कहा था न अभी, 'टोडरमलजी' में आता है न ? सब

अवसर आ गया है। तेरी आलसे, नजर के आलसे रे भगवान पड़ा रहा अन्दर में। 'नजर के आलसे, नयने न नीरख्या हरि'-लो ! अन्तिम शब्द है। यह भाई ! बहुत बोलते हैं बारम्बार, हाँ ! (इन्हें) पूरा कण्ठस्थ है न ! इन्हें पूरा कण्ठस्थ है। यह दाव-अवसर, यह दाव। ये दाव नहीं डालते ? पासा कहते हैं कि है दाव डालने का अवसर है। इसे मत चूको, मुश्किल से ऐसा थोड़ा काल आया। आहा.. !

भावार्थ :- 'यह राग (मोह, अज्ञान) रूप अग्नि...' देखो ! राग का अर्थ मोह.. मोह है यह। **'अनादिकाल से हमेशा संसार जीवों को दुःखी कर रही है-दुःखी कर रहा है...'** कौन ? रागरूप अग्नि। **'इसलिए जीवों को निश्चयरत्नत्रय समतारूप अमृत का पान करना चाहिए...'** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मा का अमृत है, उस आत्मा की दृष्टि होकर उसे अमृतस्वरूप कहा जाता है-उसका सेवन करना चाहिए। **'जिससे राग-द्वेष-मोह (अज्ञान का) नाश होता है। विषय-कषाय का सेवन तू, बहुत काल से कर रहा है...'** यह तो अनन्तकाल से करता आया है। **'अब उनका त्याग करके आत्मपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहिए। तू दुःख किसलिए सहन करता है ?'** मूढता से सेवन करता है। भान हीं है इसे।

'तेरा वास्तविक स्वरूप अनन्तदर्शन-ज्ञान-सुख और अनन्तवीर्य है...' यह उसमें तू दृष्टि कर और लीन हो। तेरा घर तेरे पास है। घर में आया नहीं। क्या गाया नहीं था अभी ? अपना निजघर नहीं पाया। आया था न ? **'कबहु निजघर न आयो।'** परघर भटक-भटककर मर गया, भगवान आत्मा, बापू ! अन्दर पूर्णानन्द निजघर में कभी नहीं आया, अब तो आ ! -ऐसा कहते हैं। आहा..हा... ! परन्तु कर्म मार्ग दे, तब हो न हमारे ? ऐसा किसने कहा तुझे ?

'तु दुःख किसलिए सहन करता है ?' तेरा वास्तविक स्वरूप तो यह है। **'ऐसा करने से ही सच्चा सुख-मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इसलिए हे दौलतराम ! हे दौलतराम !'** आत्मा की अनन्त दौलत का राम-'दौलतराम' है, उसका नाम भी 'दौलतराम' आया। (समस्त) आत्मायें 'दौलतराम' है। इस धूल की दौलत में कुछ नहीं है। हैरान-हैरान होकर मर जाता है तो भी नहीं छोड़ता है।

'हे जीव ! अब आत्मस्वरूप की प्राप्ति कर ! पहिचान कर ! यह उत्तम अवसर बारम्बार

नहीं मिलता...' बहिनें गाती हैं-'नाणा मलशे पण टाणा नहीं मले'-ऐसा गाती है पैसा खर्च करने के लिये। यहाँ कहते हैं कि, बापा ! ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। नहीं गाती बहिने ? यह विवाह होता है न, तब गाती हैं। ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। ऐ..भाई ! मोटा ने मोढा आगल करीने उठो रे । ए.. भाई ! जाग रे, उठो रे आम लगन आव्या-ऐसा करके गाती हैं। टाणा नहीं मिले-ऐसा करके (कहे) खर्च करो कुछ घर का उजला करने को। धूल में भी नहीं, वहाँ तू घर मैला करता है। यहाँ तो कहते हैं, हे आत्मा ! जाग रे जाग ! तेरा घर उजला कर, भाई ! आहा..हा..! समझ में आया ? **'यह उत्तम अवसर नहीं मिलता, इसलिए यह अवसर मत गँवा; संसार के मोक्ष का त्याग करके मोक्षप्राप्ति का उपाय कर।'**

'यहाँ विशेष ऐसा समझना कि..' देखो ! यह सब अन्तिम शिक्षा का उपदेश है, हाँ ! पूरा। **'जीव अनादिकाल से मिथ्यात्वरूप अग्नि और राग-द्वेषरूप अपने अपराध से ही दु:खी हो रहा है...'** अपने अपराध से (दु:खी) हो रहा है। **'इसलिए अपने सुलटे पुरुषार्थ से ही सुखी हो सकता है। ऐसा नियम होने से जड़कर्म के उदय से या किसी पर के कारण दु:खी हो रहा है अथवा पर के द्वारा जीव को लाभ-नुकसान होता है-ऐसा मानना यथार्थ नहीं है।'** कहो, समझ में आया कुछ ? कर्म के कारण दु:खी हुआ, कर्म के कारण भटका हूँ; कर्म के कारण हैरान हुआ-यह बात मानना सत्य नहीं है। अन्तिम बात। लो !

ग्रन्थ-रचना का काल और उसमें आधार

इक नव वसु एक वर्ष कीतीज शुक्ल वैशाख;
कर्यो तत्त्व-उपदेश यह, लखी बुधजनकी भाख।
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल;
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ।।१६।।

भावार्थ :- पण्डित बुधजनकृत [१]छहढाला के कथन का आधार लेकर मैंने (दौलतरामने)

१. इस ग्रन्थ में छह प्रकार के छन्द और छह प्रकरण हैं इसलिये तथा जिस प्रकार तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार को रोकनेवाली ढाल होती है, उसीप्रकार जीवकी अहितकारी शत्रु-मिथ्यात्व, रागादि आस्रवों का तथा अज्ञानांधकारकी रोकने के लिये ढाल के समान यह छह प्रकरण हैं; इसलिये इस ग्रन्थ का नाम छहढाला रखा गया है।

विक्रम संवत १८९१ वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है। मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार-समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो ।

छठवीं ढाल का सारांश

जिस चारित्र के होने से समस्त परपदार्थों से वृत्ति हट जाती है, वर्णादि तथा रागादि से चैतन्यभाव को पृथक् कर लिया जाता है, अपने आत्मा में, आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा, अपने आत्मा का ही अनुभव होने लगता है, वहाँ नय, प्रमाण, निक्षेप, गुण-गुणी, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय, कर्ता-कर्म और क्रिया आदि भेदों का किंचित् विकल्प नहीं रहता; शुद्ध उपयोगरूप अभेद रत्नत्रय द्वारा शुद्ध चैतन्य का ही अनुभव होने लगता है, उसे स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं; यह स्वरूपाचरणचारित्र चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर मुनिदशा में अधिक उच्च होता है। तत्पश्चात् शुक्लध्यान द्वारा चार घातिकर्मों का नाश होने पर वह जीव केवलज्ञान प्राप्त करके १८ दोषरहित श्रीअरिहन्तपद प्राप्त करता है; फिर शेष चार अघातिकर्मों का भी नाश करके क्षणमात्र में मोक्ष प्राप्त कर लेता है; उस आत्मा में अनन्तकाल तक अनन्त चतुष्टय का (अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य का) एक-सा अनुभव होता रहता है; फिर उसे पंचपरावर्तनरूप संसार में नहीं भटकना पड़ता; वह कभी अवतार धारण नहीं करता; सदैव अक्षय अनन्त सुख का अनुभव करता है; अखण्डित ज्ञान-आनन्दरूप अनन्तगुणों में निश्चल रहता है; उसे मोक्षस्वरूप कहते हैं ।

जो जीव, मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस रत्नत्रय को धारण करते हैं और करेंगे उन्हें अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होगी । प्रत्येक संसारी जीव मिथ्यात्व, कषाय और विषयों का सेवन तो अनादिकाल से करता आया है किन्तु उससे उसे किंचित् शान्ति प्राप्त नहीं हुई । शान्ति का एकमात्र कारण तो मोक्षमार्ग है; उसमें उस जीवने कभी तत्परतापूर्वक प्रवृत्ति नहीं की; इसलिये अब भी यदि शान्ति की (आत्महित की) इच्छा हो तो आलस्य को छोड़कर, (आत्मा का) कर्तव्य समझकर; रोग और वृद्धावस्थादि आने से पूर्व ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्त हो जाना चाहिए; क्योंकि यह पुरुष-पर्याय, सत्समागम आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नहीं होते; इसलिये उन्हें व्यर्थ गँवाकर अवश्य ही आत्महित साध लेना चाहिए ।

ग्रन्थ-रचना का काल और उसमें आधार

इक नव वसु एक वर्ष की तीज शुक्ल वैशाख;
कर्यो तत्त्व-उपदेश यह, लखी बुधजनकी भाख।
लघु-सी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल;
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥१६॥

भावार्थ :- 'मैंने (दौलतराम ने) पण्डित बुधजनकृत 'छहढाला' के कथन का आधार लेकर...' यह कहा, उस ढाला की व्याख्या एकबार की थी। देखो ! नीचे है।

'इस ग्रन्थ में छह प्रकार के छन्द और छह प्रकरण हैं, इसलिये, तथा जिस प्रकार तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार को रोकनेवाली ढाल होती हैच उसी प्रकार जीव को अहितकारी शत्रु-मिथ्यात्व, रागादि आस्त्रवों को तथा अज्ञानांधकार को रोकने के लिये ढाल के समान यह छह प्रकरण है....' यह छह अधिकार ढाल के समान हैं, **'इसलिये इस ग्रन्थ का नाम 'छहढाला' रखा गया है।'**

'विक्रम संवत १८९१ वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस 'छहढाला' ग्रन्थ की रचना की है। मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गयी हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़े, ताकि जीव संसारसमुद्र पार करने में शक्तिवान हो।' लो ! पोष कृष्ण दशमी से शुरू किया था। इस रविवार को पूर्ण होता है। 'छहढाला'। अन्तिम एक बोल थोड़ा-सा ले लेते हैं। अन्तिम थोड़ा है न ?

कोई द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्ता वास्तव में नहीं है। है इसमें, सब में है ? सब में है ? अब इसमें तो बहुत आ गया है, हाँ ! चिदेश कर्ता, स्वयं कर्ता है, दूसरा कोई कर्ता नहीं है। कोई द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्ता वास्तव में नहीं है। आत्मा का स्वभाव तो ज्ञाता-दृष्टा है। है ? अन्तिम, अन्तिम, एकदम अन्तिम, एकदम सब निकाल कर अन्तिम।

आत्मा का स्वभाव तो दृष्टा-ज्ञाता है। निकला लड़कों ? अब स्वयं देखनेवाला-जाननेवाला तो रहता नहीं। मैं तो एक देखनेवाला-जाननेवाला आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ। जिस-

जिस पदार्थ को वह देखता-जानता है, उसमें इष्ट अनिष्पटना मानता है। मानता है, इष्ट-अनिष्ट है नहीं। आत्मा, जानने-देखनेवाला है। जगत की चीजें ज्ञात हों-ऐसी योग्यता इसमें है, यह जाननेवाला है, बीच में दूसरा कोई नहीं है। पाँच लड़के हैं, उनमें एक लड़का इसका हो, ऐसे देखे तो पाँचों को ही एकसाथ, है या नहीं ? जानने में क्या फरक् है ? यह मेरा-यह कहाँ से आया ?

मुमुक्षु :-...

उत्तर :- खड़ा किया यह तो। पाँच लड़के एकसाथ खड़े हो, उनमें इसका एक लड़का खड़ा (हो)-यह मेरा है-मेरा कहाँ से आया ? इन पाँचों को ही जानने का तू जाननेवाला है।

मुमुक्षु :- चेहरा-मेहरा इसके जैसा होवे।

उत्तर :- चेहरा-मेहरा इसके जैसा कहाँ था ? धूल में। वह तो पर में है। आकार और प्रकार ऐसा लिखा है, हाँ। समझ में आया ?

ऐसे (ही), मकान, ऐसे गहना, ऐसे लक्ष्मी, ऐसे जो जहाँ देखे-यह तो जानने-देखनेवाला है। उसमें यह मेरा-यह कहाँ से (आया) ? इसमें लिखा है, इसमें ?

मुमुक्षु :- उसमें जाए..

उत्तर :- किस प्रकार जाए ? कौन जाता है ? यह तो स्वयं अपने ज्ञान में रहता है। जाए कहाँ और आवे कहाँ ? जिस पदार्थ को देखे-जाने, उसमें इष्टपना मानता है-ऐसा कहना है, है नहीं। यह तो जानने-देखने योग्य है आत्मा और इस जानने-देखने में ज्ञेय है; बीच में यह विपरीतता घुसाता है कि यह मुझे ठीक है और यह हैं मेरे; यह मुझे ठीक नहीं और यह नहीं मेरे। यह बीच में लकड़ी निकाली (-विपरीतता की)। सब महिलायों तो बहुत हैं, परन्तु यह मेरी-यह ऐसा क्यों हुआ ? कहाँ से आया ? यह कहते हैं। परन्तु सब महिलायें तो बहुत हैं। आत्मा है, शरीर है-वे तो ज्ञान में जानने योग्य हैं।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- यह अन्दर भ्रम को खोसका है-ऐसा कहते हैं। नहीं कहा ? मानता है। इसलिए

रागी-द्वेषी होता है। मानता है, इसलिये राग-द्वेष (होते हैं)। यह तो ज्ञाता-दृष्टा है; जानने देखनेवाला हैऔर वे ज्ञात हों-ऐसी वस्तुयें हैं। बीच में दो के अतिरिक्त तीसरा सम्बन्ध नहीं है; (फिर भी) सम्बन्ध खड़ा करता है। किसी के सद्भाव को और किसी के अभाव को चाहता है, परन्तु उनका सद्भाव या अभाव इस जीव के करने से होता ही नहीं। यह होवे तो ठीक, यह रहे तो ठीक, हाँ ! पर रहे तो ठीक अर्थात् ? उनका रहना कहीं तेरे आधीन है ? यह रहे तो ठीक, यह अनुकूलता, इतने-इतने पदार्थ रहे न तो बहुत अच्छा; और किसी का अभाव चाहते हैं-यह रोग आदि चला जाए, अप्रतिष्ठा चली जाए तो ठीक.. परन्तु ऐसे चली जाती है ? वे तो जगत के पदार्थ हैं, भाई ! देखो ! यह क्या लिखा है ? है अन्दर, हाँ !

किसी का सद्भाव-अभाव.. है ? वह जीव के करने से नहीं होता। अन्दर तो है अभी, सवेरे पूछा, कैसे हैं ? ... कारण कि कोई द्रव्य, किसी अन्य द्रव्य का कर्ता है ही नहीं। तू सद्भाव (चाहे) इसलिए इससे उनका अस्तित्व रहे और अस्तित्व छोड़ना चाहे, इसलिए अस्तित्व चला जाए (-ऐसे) तेरे आधीन है ही नहीं; (वे तो) उनके आधीन आते हैं और उनके आधीन जाते हैं। ...परन्तु सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं। वे उनके कारण आते और जाते हैं। तू तेरे कारण जान और देख, बस ! बाकी दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार मात्र यह जीव व्यर्थ कषायभाव करके व्याकुल होता है। व्यर्थ का... जानना-देखना छोड़कर, निज मानकर, बुरा मानकर, दुश्मन मानकर, शत्र मानकर, मित्र मानकर व्यर्थ कषाय करके दुःखी होता है। इसलिए हे जीव ! ऐसा अवसर मिला, अब (मिथ्या मान्यता को) छोड़ ! ऐसा अन्त में कहा है न ? अब यह रखने जैसा नहीं है। लो ! (विशेष कहेंगे...)

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)